© AJH 2019 | Vol. 01, Issue 01, Jan. – June 2019

ANSH – Journal of History

ISSN (Online) No. 2582 -046X

Peer-Reviewed, Refereed & Open-Access International Journal of History

लोक साहित्य, संस्कृति और इतिहास (राजस्थान के विशेष संदर्भ में)

Mr. Shesh Karan B. Charan

Assistant Professor - (Department Of History),

Govt. Arts College, Wav (Banaskantha)

Abstract :

लोकगीत लोकनाट्य एवं लोकवाद्य राजस्थानी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रमुख अंग हैं। आदिकाल से आजतक इन कलाओं का विविध रुप में विकास होता आया है। इन कलाओं का पारस्परितक सम्बन्घ भी घनिष्ठ है। इन सभी का साथ - साथ प्रयोग रंगमंच या तौराहों पर समां बाँध देता है। ये कलाएँ किसी न किसी पूर में शास्त्रीय संगीत की सीधी विचारों से नहीं जुड़ती हैं परन्तु लय और ताल में समानता आ जाती है। यदि इन कलाओं के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि रह युग में इनमें एकरुपता रही है जिनकी अभिव्यक्ति राजस्थानी जन जीवन में प्रस्फुटित हुई है। इन विद्याओं के विकास में भक्ति प्रेम उल्लास और मनोरंजन का प्रमुख स्थान रहा है। इनके पल्लवन में लोक - आस्था की प्रमुख भूमिका रही है। बिना आस्था और विश्वास के इन लोक कलाओं में अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

लोककला का राजस्थानी स्वरुप आज भी भारतीय लोककला को नई दिशा देने में अग्रणी है। इनकी केन्द्रीय स्थिती पंजाब मध्य भारत एवं गुजरात तथा उत्तर प्रदेश इन लोक कलाओं से प्रभावित है। इन भागों के विविध जीवन पक्षों में राजस्थानी लोक कलाओं के प्रभाव का दिग्दर्शन होता है। इन कलाओं के विषय और साहित्य ने भारत के ही नहीं विदेशों के कला मर्मज्ञों के हृदय को भी आकर्षित करने में सफलता प्राप्त की है ग्राहस्थ्य जीवन की सभी साधें लोक कला के माध्यम से प्रकट हुई है।

Key word :

राजस्थानी संस्कृति, लोककला, लोक जीवन, लोक साहित्य

लोक सहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक-साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है अत: जनसाहित्य (लोकसाहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है जो साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समाई रहती हैं। अत: यदि कहीं की समूची

संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोकसाहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। यह लिपिबद्ध बहुत कम और मौखिक अधिक होता है। वैसे हिंदी लोकसाहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास इधर कुछ वर्षों से किया जा रहा है और अनेक ग्रंथ भी संपादित रूप में सामने आए हैं किंतु अब भी मौखिक लोकसाहित्य बहुत बड़ी मात्रा में असंगृहीत है।

लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोकगीतों व लोक-कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक-साहित्य में लोक-मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती-गुनगुनाती है। लोक-साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है।

लोक साहित्य लोक मानस की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। सामान्य जन अपने सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और आचार-विचार को जिस साहित्य के माध्यम से वाणी देता है वह लोक साहित्य है। व्यक्ति प्रकृति के साथ रहते हुए अपने हृदय की भावात्मक एवं रागात्मक अनुभूतियों को नैसर्गिक रूप से जब विविध-विधाओं में व्यक्त करता है तो वह लोक साहित्य बन जाता है।

''प्रकृति के बहुरंगी परिवेश में बदलती हुई ऋतुओं के साथ उसके हृदय देश में जो अनुभूतियाँ जागृत होती है, उन्हें वह अपने नैसर्गिक राग-बोध द्वारा गीतों के रूप में व्यक्त करता है। अपने व्यक्तिगत अथवा सामूहिक जीवन की मर्मस्पर्शी एवं प्रेरणादायक घटनाओं को भी वह गेय-गाथाओं के साँचें में ढाल देता है। कालयापन, मनोरंजन अथवा पूर्व पुरुषों एवं घटनाओं के स्मरण की दृष्टि से वह कथा-कहानियों की रचना करता है। बच्चों का जी बहलाने, उन्हें शिक्षा अथवा उपदेश देने और सामान्य लोगों के विवेक को जागृत करने के लिए उसे पहेलियों और कहावतों आदि की सृष्टि करनी पडती है। इस प्रकार लोक साहित्य की रचना एक सहज किन्तु सोद्देश्य प्रक्रिया के द्वारा सम्पन्न होती रहती है।''

राजस्थान की लोक संस्कृति और साहित्य में जीवन के सरोकार विद्यमान है। नई पीढ़ी हमारी इस संस्कृति को आत्मसात कर नए आयाम स्थापित कर सकती है।

गांव हो या शहर, सभी स्थानों में लोक - गीतों, लोक - नृत्यों, ख्यालों व नाट्यों का प्रमुख स्थान है। पर्वों� एवं धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों और त्यौहारों में में ऐसे अनेक गीत तथा नृत्यऔर मनोरंजन का साधन हैं जो ग्रामीण जीवन और कस्बों और नगरों में समान रुप से मिलते हैं। सामाजिक जीवन और संस्कृति के प्रतीकों के बीच कोई अन्तर नहीं है और न ही इनके मध्य कोई सीमा रेखा खींची जा सकती है। इनकी अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों में सर्वत्र मिलती है जिनका रसास्वादन सम्पूर्ण जनता करती है। लोक का व्यक्त रुप मानव है, एतएव लोक संस्कृति व्यावहारिक जीवन का परिष्कृत रुप है।

लोक संस्कृति के तीन मुख्य स्तम्भ है :

१) लोकनाट्य

२) लोकगीत

३) लोकनृत्य

संस्कृति और लोक-साहित्य के संबंध की बात करने से पूर्व लोक-साहित्य से संबंधित कुछ बातों परविचार करना जरूरी प्रतीत होता है। लोकसाहित्य हृदय का साहित्य है जिसमें नैसर्गिकता के दर्शन होते हैं। इसमें शांति, स्वभाव, आत्मैक्य और आपसी विश्वास के भाव पलते हैं। सहृदयता, सरलता, निर्भयता एवं प्रगाढ़ प्रेम के नमूने लोक साहित्य के सिवाय कहां मिलते हैं ? जिसे हम शुद्ध साहित्य कहते हैं, उसकी धारा पूर्ण रूप से तो नहीं पर काफी हद तक मस्तिष्क के तर्कजालों में फंसी हुई नजर आती है। इस साहित्य में वास्तविक व्यापार की बजाय कृित्रम व्यापार अधिक नजर आने लगा है। जबकि ज्ञान-विज्ञान, व्यवहार-वाणी, वेष-भूषा आदि वास्तविक व्यापार लोकसाहित्य की जान है। लोकसाहित्य तो प्रकृति की पूजा का साहित्य है। अतः लोकसाहित्य स्वाभाविकता के अधिक नजदीक का साहित्य है। इसी कारण वह संस्कृति का प्राण-तत्त्व होने का दावा कर सकता है।

भारतवर्ष में राजस्थान प्रांत लोकसाहित्य के क्षेत्र में एक अमूल्य संपति का अखूट खजाना है। इस प्रदेश की संस्कृति ने अद्‌भुत शौर्य, सौंदर्य और मानवीय मूल्यों की स्थापनाएं की हैं। असंख्य अभावों से घिरी इस मरुधरा के निवासियों ने प्राकृतिक आपदाओं, अकाल, अनावृष्टि तथा खेती आदि के लिए साधन-सुविधाओं के अभावों को हंसते-हंसते स्वीकार किया है, ये अभाव यहां के निवासियों के मन से उमंग, उल्लास और उत्साह को कम नहीं कर सके। अपनी जीविका उपार्जन के लिए संतोष के पश्चात यहां के निवासियों का लगभग सारा अवकाश काल लोक-संस्कृति की उन्मेशपूर्ण गरिमा में ही लगता रहा। यहां के इतिहास में पुरुषों ने वीरत्व की अक्षुण्ण छाप छोड़ी है, महिलाओं ने इतिहास को जौहर की ज्वालाओं

के अक्षरों से मंडित किया है, दातार और दानवीरों ने अपने धन को जनहितार्थ कोड़ियों के भाव बहाया और अभावों से जकड़े इस मरुप्रदेश को स्वाभिमानी बनाए रखा।

इस प्रदेश के गांव-गांव और ढाणी-ढाणी में राजस्थानी लोककला और लोकसाहित्य की स्पंदनपूर्ण थाती के दर्शन मिलते हैं। प्रेम और अनुराग की उमंगपूर्ण कथाओं में ढोला-मारू, जलाल-बूबना, नागजी-नागवंती, रिसाळू-नोपदे, सुल्तान-निहालदे की कथाएं, विद्वता और बुद्धिमानी से परिपूर्ण राजा भोज, राजा विक्रम, क्रोड़ी और क्रोड़ीधज सेठों की कथाएं, लोकगाथाओं के रूप में बगड़ावत और पाबूजी जैसे वीरात्मक महाकाव्य, पणिकारी, सूवटियो, जलौ, सुपनौ, ओळूं जैसे सरस मुक्तक गीतों का अखूट भंडार राजस्थान के लोकसाहित्य का अनुपम वैषिश्ट्य है। इन लोक सांस्कृतिक उपलब्धियों में सहज मनोभाव, चारित्र्यपूर्ण नीतियां और जीवन की नानाविध अनुभूतियों के हीरे-मोती बिखरे पड़े हैंराजस्थानी संस्कृति कहती है कि उस रक्षा के दौरान यदि मरने पड़े तो भी पीछे नहीं हटना है और ऐसा अनेक बार हुआ इसलिए यहां के सांस्कृतिक जीवन में मरण त्योहार जैसी परंपरा को मान्यता मिली और वह भी शासन-सत्ता या विशेष व्यक्तियों के लिए नहीं राव और रंक सबके लिए समान रूप से यह त्योहार मनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। परंपराएं तथा प्रथाएं इतिहास की देन हुआ करती हैं। लोकमानस में कुछ मान्यताएं बनती हैं, जो कि लोक के लिए 'महाजनो येन गतः सः पंथा' के आदर्श के आधार पर जन-जन के लिए ग्राह्य हो जाती है। राजस्थानी जनमानस में ऐसी ही कुछ मान्यताएं है- जैसे कब और कैसी परिस्थिति में आदमी को अपने कर्तव्यनिर्वहन हेतु मरने से भी नहीं हिचकना चाहिए, कब और कैसी परिस्थिति में खुशी मनाने में पीछे नहीं रहना चाहिए, कब और कैसे जीवन का आनंद लेना ही चाहिए। ऐसी भावना के परिचायक और लोक में आदरप्राप्त दो आधारभूत दोहे उल्लेखनीय है-

रण चढण, कंकण बधण, पुत्र बधाई चाव।
अै तीनूं दिन त्याग रा, कहा रंक कहा राव।।
धर जातां, ध्रम पलटतां, त्रियां पड़ंतां ताव।
तीन दिहाड़ा मरण रा, कहा रंक कहा राव।।

हमारी संस्कृति के इसी भाव को परिलक्षित करते हुए लिखा गया कि अवसर पर मरने वाले को इस लोक में सुयश मिलता है तथा परलोक में प्रभुता प्राप्त होती है-

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियां आय।
मरणों घर रै मांझियां, जम नरकां ले जाय।।

मर्यादा पालन, वचन-पालना तथा शरणागत-वत्सलता के उदाहरण राजस्थानी लोकजीवन में कदम-कदम पर देखने को मिलते हैं। यहां के लोकजीवन में ऐसे अनेक चरित्र हैं, जो इन्हीं खूबियों के कारण लोक-देवता, लोकसंत, जूझार, भोमियां, पीर आदि संबोधनों से गांव-गांव और घर-घर में पूजनीय हैं। इन महापुरुषों ने अपने जीवन से लोगों को त्याग तथा समर्पण के साथ-साथ स्वाभिमान के साथ मर्यादा-पालन का सन्देश दिया। इन पुण्यात्माओं की यह विशेषता रही कि इन लोगों ने जन सामान्य को जाति-पांति, संप्रदाय तथा उच्च-निम्न के दायरों से बाहर निकालने की पुरजोर कोशिश की। राजस्थानी लोकजीवन में प्रचलित एक दोहा इस बात की साख भरता है कि यहां के पांच लोक देवता जो कि हिंदू परिवारों से संबंधित रहे हैं, उन्हें पंचपीर कहा जाता है, जो कि मुस्लिम संस्कृति के संतों के लिए संबोधन है –

पाबू, हड़बू, रामदे, मांगळिया मेहा।
पांचूं पीर पधारिया, गोगाजी जेहा।।

राजस्थानी साहित्य में अनेकों रहस्य भरे पड़े है जिसका अध्ययन अपेक्षित है। इतने प्रभावशाली ग्रन्थों में पको पढ़कर अपने आप मे ही आध्यात्मिकता की अनुभूति होती है ।इन गर्न्थो में दैवीय तत्व समय हो ऐसा अनुभव होता है ।ऐसा ही एक कालजयी साहित्यिक कृति है देवीयाण। महात्मा ईशरदास जी द्वारा रचित इस ग्रन्थ में सक्ति की महिमा का वर्णन किया गया हैं।जिसमे कहा गया है कि दैवीय गति को मनुष्य नही समझ सकता है।वो सिर्फ अपने भाव प्रकट ही कर सकता है।शक्तितत्त्व के अनुसंधानकर्ता जिज्ञासुओं तथा साधकों के लिए 'देवियांण' अनुपम स्तोत्ररत्न है। भावुक भक्त की भक्ति एवं प्रपत्ति की अभिव्यंजना के साथ-साथ ज्ञानात्मक सूक्ष्मविचार व तत्त्वनिरूपण से युक्त स्तोत्रों में यह महत्त्वपूर्ण है। यह एकशक्तिवाद या एकतत्त्ववाद का प्रतिपादक स्तोत्रकाव्य है। इसके सिद्धान्तानुसार एकमात्र शक्तितत्त्व के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है। जैसे अनेक स्वर्णाभूषण वस्तुतः स्वर्ण के ही आकृतिभेद हैं उसी प्रकार देवी, देवता, प्राणी, पर्वत, नदी, नाले सब शक्ति के ही विविध व्यक्त रूप हैं। उस शक्तितत्त्व की वास्तविकता को समझना मानवी बुद्धि के वश की बात नहीं है। देवीमहिमा के वर्णन में अपनी सारी प्रतिभा उड़ेलकर भी भक्तकवि अन्त में समर्पणभाव से कहता है –

देवी बापड़ा मानवी कांइ बूझे।
देवी तोहरा पार तूं हीज सूझे।।
देवी तूंज जांणै गति ग्हैन तोरी।
देवी तत्तरूपं गति तूंज मोरी।।

देवी माइ हिंगोऴ पच्छम्म माता, देवी देव देवाधि वर्दान दाता;

देवी गंद्रपां वास अर्बद्द ग्रामै, देवी थांण डीड्यांण सूसाण ठांमै ।। 32।।

हे देवी! आप पश्चिम दिशा में हिंगलाज माता के रूप में विराजती हो। वहाँ पधारे हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीराम को आपने ब्रह्महत्यादोष से मुक्ति का वरदान दिया था। आप गन्धर्वों के आवास सुगन्धाचल पर सूंधामाता के रूप में, आबू पर्वत पर अर्बुदा माता के रूप में, डीडवाणा नामक स्थान पर पाडलमाता के रूप में तथा सूसाणीपीठ में सूसाणीमाता के रूप में विराजमान हो।

देवी गड्ड कोटे गरन्नार गोखे, देवी सिंधु वेळा सवालख्ख सोखे;

देवी कामरू पीठ अघ्घौर कुंडै, देवी खंखरै द्रुम्म कस्मेर खंडै ।। 33।।

हे देवी! आप गढ व कोट में रक्षिका देवी के रूप में प्रतिष्ठापित हो। गिरिनार पर्वत का शिखर आपका स्थान है। आप सवालख क्षेत्र में शक्रा नदी के तट पर शाकम्भरी माता के रूप में, कामरूप पीठ में कामाख्यामाता के रूप में तथा अघोरकुण्ड के पास हिंगलाजमाता के रूप में विराजमान हो। आप कश्मीर में पत्रहीन वृक्षों के बीच क्षीर भवानी के रूप में विराजती हो।

देवी उत्तरा नागणी प्रं उजेणी, देवी भ्वांल भर्रूच्च भट्नेर भेणी;

देवी देव जालंधरी सप्त दीपै, देवी कंदरे सख्खरै बाव कूपै ।।34।।

हे देवी ! आप उत्तर में नागणेचिया माता के रूप में विराजती हो। उज्जैन, भंवाल, भरूच भटनेर और भेणी में आपके भव्य मन्दिर हैं। जालंधर में आपका मन्दिर है सातों द्वीपों की कन्दराओं में पर्वत-शिखरों पर तथा बावड़ियों व कुओं के पास आपके मन्दिर हैं।

देवी मेटळीमाळ धूमै गरब्बे; देवी काछ कन्नोज आसांम अम्बे;

देवी सब्ब खंडे रसा गीरिश्रृंगे, देवी वंकड़े दुर्गमे ठाँ विहंगे ।। 35।।

संदर्भ:

01. डा ॅ. विक्रमसिंह राठौड़: राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 03

02. पी.सरीन: भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रूपरेखा, पृ. 02

03. पंडित रामनरेष त्रिपाठी: कविता कौमुदी, पांचवां भाग

04. श्री नानूराम संस्कर्ता: राजस्थानी लोकसाहित्य, पृ.सं. 11

05. लाखीणा लोकगीत: पुष्पादेवी सैनी, पृ. 38

06. श्री नानूराम संस्कर्ता: राजस्थानी

07 .महात्मा ईशरदास : देवीयाण